श्रीहरिः

गीताभवन-दोहा-संग्रह

गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रथम संस्करणका निवेदन

ऋषिकेश-स्वर्गाश्रमके समीप भगवती गङ्गाके पवित्र तटपर 'श्रीगीताभवन' अवस्थित है। वहाँ यों तो बारहों महीने यात्री आते रहते हैं; परंतु लगभग चैत्रसे आषाढ़तक तो प्रतिवर्ष वहाँ सत्सङ्गकी विशेष व्यवस्था रहती है। सैकड़ों सत्सङ्गी भाई-बहिन उससे लाभ उठाते हैं। इस 'गीताभवन' में श्रीमद्भगवद्गीता पूरी सुन्दर अक्षरोंमें संगमर्मर-पत्थरपर खुदवाकर लगायी गयी है। साथ ही बहुत-से सुन्दर-सुन्दर चुने हुए हिंदीके दोहे जहाँ-तहाँ लिखे गये हैं। 'गीताभवन' में आनेवाले हजारों यात्री उन दोहोंको बड़ी उत्सुकताके साथ पढ़ते हैं। पढ़नेपर उनका मन होता है कि वे पसंदके दोहोंको लिख लें। बहुत-से सज्जन लिखनेका प्रयत्न करते हैं, परंतु पूरे लिख नहीं पाते। इससे वे अनुरोध करते हैं कि इन दोहोंका संग्रह प्रकाशित हो जाना चाहिये। कई यात्री तो बहुत अधिक आग्रह करते हैं और उनका ऐसा आग्रह दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है।

यात्री महानुभावोंके इस अनुरोध और आग्रहको टाल सकना अब बहुत ही कठिन हो गया। इसीलिये यह 'गीताभवन-दोहा-संग्रह' (भूलें सुधारकर) प्रकाशित किया जा रहा है। इससे गीताभवनके यात्रियोंको तो संतोष होगा ही, साथ ही, अन्यान्य पाठकोंको भी बड़ा लाभ होगा; क्योंकि इसमें, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, धर्म आदि विविध विषयोंपर महात्माओं, संतों और भक्तोंके चुने हुए अनुभवपूर्ण उपदेश हैं। इन उपदेशोंके पठन, श्रवण और धारण करनेसे प्रत्येक मनुष्यका कल्याण हो सकता है।

निवेदक—**प्रकाशक**

श्रीहरिः

गीताभवन-दोहा-संग्रह

चार वेद षट शास्त्रमें, बात मिली है दोय।
दुख दीने दुख होत है, सुख दीने सुख होय ॥ १ ॥
ग्रंथ पंथ सब जगतके, बात बतावत तीन।
राम हृदय, मनमें दया, तन सेवामें लीन ॥ २ ॥
तन मन धन दै कीजिये, निशिदिन पर उपकार।
यही सार नर देहमें, वाद-विवाद बिसार ॥ ३ ॥
चींटीसे हस्ती तलक, जितने लघु गुरु देह।
सबकौं सुख देबो सदा, परमभक्ति है येह ॥ ४ ॥
काम क्रोध अरु लोभ मद, मिथ्या छल अभिमान।
इनसे मनकौं रोकिबो, साँचौं व्रत पहिचान ॥ ५ ॥
श्वास श्वास भूले नहीं, हरिका भय अरु प्रेम।
यही परम जय जानिये, देत कुशल अरु क्षेम ॥ ६ ॥
मान धाम धन नारिसुत, इनमें जो न असक्त।
परमहंस तिहिं जानिये, घर ही माहिं विरक्त ॥ ७ ॥
प्रिय भाषण पुनि नम्रता, आदर प्रीति विचार।
लज्जा क्षमा अयाचना, ये भूषण उर धार ॥ ८ ॥
शीश सफल संतनि नमें, हाथ सफल हरि सेव।
पाद सफल सतसंग गत, तब पावै कछु भेव ॥ ९ ॥

तनु पवित्र सेवा किये, धन पवित्र कर दान ।
मन पवित्र हरिभजन कर, होत त्रिविध कल्यान ॥ १० ॥
धिक मानस तनु भक्ति विन, धिक मति बिना विवेक ।
विद्या धिक निष्ठा विना, धिक सुख बिन हरि टेक ॥ ११ ॥
विद्या बल धन रूप यश, कुल सुत वनिता मान ।
सभी सुलभ संसारमें, दुर्लभ आतमज्ञान ॥ १२ ॥
प्रिय भाषी शीतल हृदय, संयम सरल उदार ।
जो जन ऐसो जगतमें, तासों सबको प्यार ॥ १३ ॥
पूरण भय जगदीशको, जाके मनमें होय ।
गुप्त प्रगट भीतर बहिर, पाप करत नहिं सोय ॥ १४ ॥
सत्य वचन आधीनता, परतिय मात समान ।
इतनेमें हरि ना मिलें, तुलसीदास जमान ॥ १५ ॥
राम नाम जपते रहो, जब लगि घटमें प्रान ।
कबहुँक दीनदयालके, भनक परैगी कान ॥ १६ ॥
दया धर्मका मूल है, नरक मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छाँड़िये, जब लगि घटमें प्रान ॥ १७ ॥
श्रीरघुबीर प्रताप तें, सिंधु तरे पाषान ।
ते मतिमंद जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन ॥ १८ ॥
कबीर यह तन जात है, सकै तो राख बहोर ।
खाली हाथों वे गये, जिनके लाख करोर ॥ १९ ॥
मैं मैं बड़ी बलाय है, सको तो निकसो भाग ।
कह कबीर कब लग रहै, रुई लपेटी आग ॥ २० ॥

कवीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय ।
आप ठगे सुख ऊपजे, और ठगे दुख होय ॥ २१ ॥
कवीर यह तनु जात है, सकै तो ठौर लगाय ।
कै सेवा कर साधुकी, कै हरिके गुण गाय ॥ २२ ॥
उज्ज्वल पहिने कापड़ा, पान सुपारी खाय ।
कवीर हरिकी भक्ति विन, वाँधा यमपुर जाय ॥ २३ ॥
मनुष जन्म दुर्लभ अति, होत न वारंवार ।
तरुवर सों पत्ता झड़े, वहुरि न लागे डार ॥ २४ ॥
कवीर सब जग निरधना, धनवंता नहिं कोय ।
धनवंता सो जानिये, जाके रामनाम धन होय ॥ २५ ॥
सौ पापनका मूल है, एक रुपैया रोक ।
साधु होय संग्रह करै, मिटै न संशय शोक ॥ २६ ॥
मर जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तनुके काज ।
परमारथके कारने, मोहिं न आवे लाज ॥ २७ ॥
करनी विन कथनी कथै, अज्ञानी दिन रात ।
कूकर जिमि भूसत फिरै, सुनी सुनायी बात ॥ २८ ॥
तुलसी या जग आयकै, पाँच रतन हैं सार ।
संतमिलन अरु हरि भजन, दया, दीन, उपकार ॥ २९ ॥
संत समागम हरिकथा, तुलसी दुर्लभ दोय ।
दारा सुत अरु लक्ष्मी, पापीके भी होय ॥ ३० ॥
वहुत गई थोरी रही, नारायण अब चेत ।
काल चिरैया चुग रही, निसि दिन आयू खेत ॥ ३१ ॥

धन जोवन यों जायगो, जा बिधि उड़त कपूर ।
नारायण गोपाल भज, क्यों चाटै जग धूर ॥ ३२ ॥
नारायण संसारमें, भूपति भये अनेक ।
मैं मेरी करते रहे, लै न गए तृन एक ॥ ३३ ॥
तेरे भावैं जो करौ, भलौ बुरौ संसार ।
नारायण तू बैठकै, अपनौ भवन बुहार ॥ ३४ ॥
नारायण सतसंग कर, सीख भजनकी रीत ।
काम क्रोध मद लोभमें, गई आर्बल बीत ॥ ३५ ॥
धन विद्या गुण आयु बल, ये न बड़प्पन देत ।
नारायण सोई बड़ो, जाको हरिसों हेत ॥ ३६ ॥
नारायण हरि भजनमें, तू जनि देर लगाय ।
का जाने या देर में, श्वासा रहे कि जाय ॥ ३७ ॥
नारायण बिन बोधके, पंडित पसू समान ।
तासों अति मूरख भलो, जो सुमिरे भगवान ॥ ३८ ॥
नारायण जब अंतमें, जम पकरेंगे बाँहिं ।
तिनसों भी कहियो हमें, अभी सोफतों नाहिं ॥ ३९ ॥
मन लाग्यौ सुख-भोगसें, तरन चहै संसार ।
नारायण कैसे बनै, दिवस रैनिकौ प्यार ॥ ४० ॥
काम क्रोध मद लोभकी, लगी हियेमें आग ।
नारायण वैराग भट, सहित ज्ञान गए भाग ॥ ४१ ॥
विद्यावंत सुरूप गुण, सुत दारा अरु भोग ।
नारायण हरिभक्त बिन, ये सब ही हैं रोग ॥ ४२ ॥

संत सभा झाँकी नहीं, कियौ न हरि गुन गान ।
नारायण फिर कौन विधि, तू चाहत कल्यान ॥ ४३ ॥
नारायण सुख भोगमें, मस्त सभी संसार ।
कोउ मस्त वा मौजमें, देखौ आँख पसार ॥ ४४ ॥
नारायण या जगत्में, यह दो वस्तू सार ।
सबसों मीठो बोलिवो, करिबो पर उपकार ॥ ४५ ॥
नारायण परलोकमें, ये दो आवत काम ।
देना मुट्ठी अन्नकी, लेना भगवत नाम ॥ ४६ ॥
बाँट खाय हरिको भजै, तजै सकल अभिमान ।
नारायण ता पुरुषको, उभय लोक कल्यान ॥ ४७ ॥
नारायण दो बातको, दीजै सदा बिसार ।
करी बुराई औरने, आप कियौ उपकार ॥ ४८ ॥
दो बातनको भूल मत, जो चाहै कल्यान ।
नारायण इक मौतको, दूजे श्रीभगवान ॥ ४९ ॥
तज पर अवगुण नीरको, क्षीर गुणन सों प्रीत ।
हंस संतकी सर्वदा, नारायण यह रीत ॥ ५० ॥
तनक मान मनमें नहीं, सबसों राखत प्यार ।
नारायण ता संत पै, वार वार बलिहार ॥ ५१ ॥
अति कृपालु संतोष वृति, जुगल चरणमें प्रीत ।
नारायण ते संत वर, कोमल बचन विनीत ॥ ५२ ॥
मगन रहैं नित भजनमें, चलत न चाल कुचाल ।
नारायण ते जानिये, ये लालन के लाल ॥ ५३ ॥

पर हित प्रीति उदारचित, विगत दंभ मद रोष ।
नारायण दुखमें लखै, निज कर्मनकौ दोष । ५४ ॥
संत जगतमें सो सुखी, मैं मेरीकौ त्याग ।
नारायण गोविंद पद, दृढ़ राखत अनुराग ॥ ५५ ॥
जिनके पूरण भक्ति है, ते सबसों आधीन ।
नारायण तज मान मद, ध्यान सलिलके मीन ॥ ५६ ॥
नारायण हरि भक्तिकी, प्रथम यही पहिचान ।
आप अमानी ह्वै रहै, देत औरको मान ॥ ५७ ॥
कपट गाँठ मनमें नहीं, सबसों सरल सुभाव ।
नारायण ता भक्तकी, लगी किनारे नाव ॥ ५८ ॥
जिनको मन हरि पद कमल, निसिदिन भ्रमर समान ।
नारायण तिनसों मिलैं, कबहुँ न होवै हान ॥ ५९ ॥
नारायण जो करि कृपा, संत पधारैं धाम ।
आगेसे उठि प्रीति सों, कीजै दंड प्रणाम ॥ ६० ॥
नारायण हरि कृपाकी, तकत रहै नित बाट ।
जानहार जिमि पारको, निरखत नौका घाट ॥ ६१ ॥
चाह मिटी चिंता गई, मनुवा बेपरवाह ।
जाको कछु न चाहिये, सोई साहनसाह ॥ ६२ ॥
नारायण होवै भले, जो कछु होवनहार ।
हरिसों प्रीत लगायकै, अब कहा सोच विचार ॥ ६३ ॥
नारायण अति कठिन है, हरि मिलिवैकी बाट ।
या मारग तब पग धरै, प्रथम शीश दै काट ॥ ६४ ॥

नेह डगरमें पग धरै, फेर विचारै लाज ।
नारायण नेही नहीं, बातनको महाराज ॥ ६५ ॥
गढ़ गढ़के बातें कहै, मनमें तनक न प्रीत ।
नारायण कैसे मिलैं, साहब साँचे मीत ॥ ६६ ॥
लगन लगन सबही कहैं, लगन कहावै सोय ।
नारायण जा लगनमें, तन मन दीजै खोय ॥ ६७ ॥
जो सिर साँटे हरि मिलैं, तौ पुनि लीजै दौर ।
नारायण ऐसी न हो, गाहक आवै और ॥ ६८ ॥
नारायण हरि लगनमें, यह पाँचों न सुहात ।
विषयभोग, निद्रा, हँसी, जगतप्रीत, बहु बात ॥ ६९ ॥
प्रेम सहित अँसुवन ढरै, धरै जुगलको ध्यान ।
नारायण ता भक्तको, जगमें दुर्लभ जान ॥ ७० ॥
नारायण जाके हिये, उपजत प्रेम प्रधान ।
प्रथमहिं वाकी हरत है, लोक-लाज, कुल-कान ॥ ७१ ॥
नारायण जप जोग तप, सबसों प्रेम प्रबीन ।
प्रेम हरीको करत है, प्रेमीके आधीन ॥ ७२ ॥
नारायण यह प्रेम सुख, मुखसों कह्यो न जाय ।
ज्यों गूँगौ गुण खात है, सैनन स्वाद लखाय ॥ ७३ ॥
प्रेम खेल सबसों कठिन, खेलत कोउ सुजान ।
नारायण बिन प्रेमके, कहा प्रेम पहिचान ॥ ७४ ॥
प्रेम पियाला जिन पिया, झूमत तिनके नैन ।
नारायण वा रूपमें, छके रहैं दिन रैन ॥ ७५ ॥

नारायण जाके हृदय, लगी प्रेमकी रौर।
ताही कौ जीवन सफल, दिन काटैं सब और ॥ ७६ ॥
नेम धरम धीरज समझ, सोच विचार अनेक।
नारायण प्रेमी निकट, इनमें रहै न एक ॥ ७७ ॥
रूप छके झूमत रहैं, तनकौ तनिक न ज्ञान।
नारायण दृग जल भरें, यही प्रेम पहिचान ॥ ७८ ॥
है न्यारो सब पंथ ते, प्रेम पंथ अभिराम।
नारायण यासें चलत, वेग मिलै पिय धाम ॥ ७९ ॥
मनमें लागी चटपटी, कब निरखूँ घनश्याम।
नारायण भूल्यो सभी, खानपान विश्राम ॥ ८० ॥
सुनत न काहूकी कही, कहै न अपनी बात।
नारायण वा रूपमें, मगन रहै दिन रात ॥ ८१ ॥
देह गेहकी सुध नहीं, टूट गई जग प्रीत।
नारायण गावत फिरै, प्रेम भरे रस गीत ॥ ८२ ॥
धरत कहूँ पग परत कित, सुरत नहीं इक ठौर।
नारायण प्रीतम बिना, दीखत नहिं कछु और ॥ ८३ ॥
भयौ बावरौ प्रेममें, डोलत गलियन माहिं।
नारायण हरि लगनमें, यह कछु अचरज नाहिं ॥ ८४ ॥
प्रेमसहित गदगद गिरा, कहत न मुख सों बात।
नारायण महबूब बिन, और न कछू सुहात ॥ ८५ ॥
कह्यौ चहै कछु, कहत कछु, नैन नीर स्वर भंग।
नारायण बौरौ भयो, लग्यो प्रेमकौ रंग ॥ ८६ ॥

कबहुँ हँसै रोवै कबहुँ, नाचत करि गुणगान ।
नारायण तन सुधि नहीं, लग्यो प्रेमको बान ॥ ८७ ॥
नारायण जाके दृगन, सुंदर श्याम समाय ।
फूल पात फल डारमें, ताकौं वही दिखाय ॥ ८८ ॥
ब्रह्मादिकके भोग सुख, विष सम लागत ताहि ।
नारायण ब्रजचंदकी, लगन लगी है जाहि ॥ ८९ ॥
नारायण हरि प्रीतमें, जाकौ तन मन चूर ।
ताहि न ममता औरसों, निकट रहौ वा दूर ॥ ९० ॥
गुण गावै गोपालके, भर लावै दृग नीर ।
नारायण नहिं कल परै, बिन देखे बलवीर ॥ ९१ ॥
जाके मनमें बसि रही, मोहनकी मुसक्यान ।
नारायण ताके हिये, और न लागत ज्ञान ॥ ९२ ॥
नारायण तब जानिये, लगन लगी या काल ।
जित तितमें दृष्टी परै, दीखै मोहनलाल ॥ ९३ ॥
नारायण दो बात सों, अधिक और नहिं बात ।
रसिकनको सतसंग नित, जुगल ध्यान दिन रात ॥ ९४ ॥
नहिं ऐसो कोइ जगतमें, कठिन कठिनतर काम ।
जो यथार्थ बल बुद्धि ते, हो न सिद्ध परिणाम ॥ ९५ ॥
बहुरि पलट आवत नहीं, छिन छिन बीतत जाहि ।
समय अमित अनमोल है, समझ करौ व्यय ताहि ॥ ९६ ॥
जन्म मरणसे रहित है, नारायण करतार ।
हरि भक्तनके हेत सों, लेत मनुज अवतार ॥ ९७ ॥

जब लौं सुमिरे ना हरी, जो संतनके मीत ।
बहु दिन गिनतीमें नहीं, गए वृथा सब बीत ॥ ९८ ॥
करौ त्याग नाना कपट, मन हरिपद अनुराग ।
सोवत बीते काल बहु, महामोह निशि जाग ॥ ९९ ॥
पानी बाढ़ौ नावमें, घरमें बाढ़ौ दाम ।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानौ काम ॥१००॥
का मुख लै हँसि बोलिये, तुलसी दीजै रोय ।
जन्म अमोलक आपनौ, चले अकारथ खोय ॥१०१॥
हाथी घोड़े धन घना, चंदमुखी बहु नार ।
नाम बिना यमलोकमें, पावत दुःख अपार ॥१०२॥
मोह महा दुख रूप है, ताको मार निकार ।
प्रीति जगतकी छोड़ दे, तब होवै निस्तार ॥१०३॥
ज्यों तीया पीहर बसै, सुरत रहै पिय माहिं ।
ऐसे जन जगमें रहैं, प्रभुको भूलैं नाहिं ॥१०४॥
भक्तनकी महिमा अमित, पार न पावै कोय ।
जहाँ भक्तजन पग धरैं, असदश तीरथ सोय ॥१०५॥
भक्त संग छाँड़ौं नहीं, सदा रहौं तिन पास ।
जहाँ न आदर भक्तकौ, तहाँ न मेरौ वास ॥१०६॥
हरि सम जग कछु वस्तु नहिं, प्रेम पंथ सम पंथ ।
सद्‌गुरु सम सज्जन नहीं, गीता सम नहिं ग्रंथ ॥१०७॥
जाही पैंडे मूत है, वाही पैंडे पूत ।
राम भजै तो पूत है, नहीं मूतका मूत ॥१०८॥

सकल वस्तु संसारकी, कबहूँ स्थिर है नाहिं ।
तिहि कारण ज्ञानी पुरुष, चित न धरत तिहि माहिं ॥१०९॥
प्रभुताको सब मरत हैं, प्रभुको मरै न कोय ।
जो कोई प्रभुको मरै, तो प्रभुता चेरी होय ॥११०॥
चलती चाकी देखिके, दिया कबीरा रोय ।
दो पाटनके बीचमें, साबित रहा न कोय ॥१११॥
जाके मन विश्वास है, सदा प्रभू हैं संग ।
कोटि काल झकझोरई, तऊ न हो चित भंग ॥११२॥
जाको राखै साइयाँ, मारि सकै नहिं कोय ।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग वैरी होय ॥११३॥
तरुवर सरवर संतजन, चौथे बरसै मेह ।
परमारथके कारनें, चारों धारे देह ॥११४॥
साधु होय संग्रह करै, दूजे दिनको नीर ।
तरै न तारै और को, यों कथ कहै कबीर ॥११५॥
कथा कीरतन कलि विषे, भवसागरकी नाव ।
कह कबीर जग तरनको, नाहीं और उपाव ॥११६॥
कथा कीरतन करनकी, जाके निसदिन रीति ।
कह कबीर वा दाससे, निश्चय कीजै प्रीति ॥११७॥
कथा कीरतन रातदिन, जाके उद्यम येह ।
कह कबीर ता साधुकी, हम चरननकी खेह ॥११८॥
सभी रसायन हम करी, नहीं नाम सम कोय ।
रंचक घटमें संचरें, सब तन कंचन होय ॥११९॥

जबहिं नाम हिरदै धरयौ, भयो पापको नास ।
मानो चिनकी आगकी, परी पुरानी घास ॥१२०॥
रूखा सूखा खाय कर, ठंडा पानी पीय ।
देख पराई चोपड़ी, क्यों ललचावे जीय ॥१२१॥
मैं अपराधी जन्मका, नख सिख भरा विकार ।
तुव दाता दुख भंजना, मेरी करौ सम्हार ॥१२२॥
क्या मुख ले विनती करूँ, लाज न आवत मोहि ।
तुव देखत अवगुण करूँ, कैसे भाऊँ तोहि ॥१२३॥
जो अबके स्वामी मिलैं, सब सुख आँखूँ रोय ।
चरणों ऊपर शीश धर, कहूँ जो कहना होय ॥१२४॥
दोष पराया देखकर, चले हसंत हसंत ।
अपना याद न आवई, जाका आदि न अंत ॥१२५॥
निंदकसे कुत्ता भला, जो हठ कर माँडे रार ।
कुत्तासे क्रोधी बुरा, गुरुहि दिखावे गार ॥१२६॥
साँचे शाप न लागई, साँचे काल न खाय ।
साँचेको साँचा मिलै, साँचे माहिं समाय ॥१२७॥
आवत गाली एक है, उलटत होय अनेक ।
कहै कबीर न उलटिये, वाहि एककी एक ॥१२८॥
गाली सों सब ऊपजैं, कलह कष्ट औ मीच ।
हार चलै सो संत है, लाग मरै सो नीच ॥१२९॥
ऐसी वाणी बोलिये, मनका आपा खोय ।
औरनको शीतल करै, आपा शीतल होय ॥१३०॥

बोली तो अनमोल है, जो कोइ जानै बोल ।
हिये तराजू तौलकर, तब मुख बाहर खोल ॥१३१॥
कुटिल वचन सबसे बुरा, जार करै तन छार ।
साधु वचन जलरूप है, बरसै अमृत धार ॥१३२॥
खोद खाद धरती सहै, कूट काट बनराय ।
कुटिल वचन साधू सहै, और से सहा न जाय ॥१३३॥
वाद विवादे विष घना, बोले बहुत उपाध ।
मौन गहै, सबकी सहै, सुमरै नाम अगाध ॥१३४॥
जहाँ दया तहिं धर्म है, जहाँ लोभ तहिं पाप ।
जहाँ क्रोध तहिं काल है, जहाँ क्षमा तहिं आप ॥१३५॥
आसन मारे क्या हुआ, मरी न मनकी आस ।
तेली केरा बैल ज्यों, घर ही कोस पचास ॥१३६॥
चलौ चलौ सब कोइ कहै, पहुँचे बिरला कोय ।
एक कनक एक कामिनी, दुर्गम घाटी दोय ॥१३७॥
परनारीके राचने, सीधा नरके जाय ।
तिनको यम छाँड़ै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥१३८॥
जहाँ काम तहँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम ।
दोनों कबहूँ ना मिलैं, रवि रजनी इक ठाम ॥१३९॥
एक कनक औ कामिनी, बिष फल किये उपाय ।
देखतही ते विष चढ़े, चाखत ही मर जाय ॥१४०॥
कंचन तजना सहज है, सहज त्रियाका नेह ।
मान बड़ाई ईरषा, दुर्लभ तजनी येह ॥१४१॥

लेनेको हरिनाम है, देनेको अनदान।
तरनेको आधीनता, डूबनको अभिमान ॥१४२॥
मरैंगे मर जायँगे, कोइ न लेगा नाम।
ऊजड़ जाय बसायँगे, छोड़ बसंता गाम ॥१४३॥
जन्म मरन दुख याद कर, कोरे काम निवार।
जिन पंथा तोहि चालना, सोई पंथ सँवार ॥१४४॥
आज कालके बीचमें, जंगल होगा बास।
ऊपर ऊपर हल फिरैं, ढोर चरैंगे घास ॥१४५॥
मन दीया कहिं और ही, तन साधोके संग।
कह कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥१४६॥
दुखमें सुमरन सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुखमें सुमरन करै, तो दुख काहे को होय ॥१४७॥
सुमरनकी सुध यों करो, ज्यों गागर पनिहार।
हालै डोलै सुरतमें, कहै कबीर बिचार ॥१४८॥
मन फुरनासे रहित कर, जौनहि विधिसे होय।
चहै भक्ति चहै ध्यान कर, चहै ज्ञानसे खोय ॥१४९॥
मनके हारे हार है, मनके जीते जीत।
परब्रह्मको पाइये, मन ही की परतीत ॥१५०॥
अनमाँगा तो अति भला, माँग लिया, नहिं दोप।
उदर समाना माँग ले, निश्चय पावै मोष ॥१५१॥
कबीर मन तो एक है, भावै तहाँ लगाय।
भावै हरिकी भक्ति कर, भावै विषय कमाय ॥१५२॥

मनके मारे बन गए, बन तज बस्ती माहिं।
कह कबीर क्या कीजिये, यह मन ठहरै नाय ॥१५३॥
कबीर यह मन लालची, समझै नहीं गँवार।
भजन करनको आलसी, खानेको हुशियार ॥१५४॥
हाड़ जलैं ज्यों लाकड़ी, केश जलैं ज्यों घास।
सब जग जलता देखकर, भये कबीर उदास ॥१५५॥
रात गँवाई सोय कर, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जन्म अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥१५६॥
आज कहैं मैं कल भजूँ, काल कहै फिर काल।
आज कालके करत ही, औसर जासी चाल ॥१५७॥
कबीर नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली, बहुरि न देखौ आय ॥१५८॥
जीवत माटी हो रहौ, साईं सनमुख होय।
दादू पहिले मर रहौ, पाछे मरै सब कोय ॥१५९॥
कहा करै बैरी प्रबल, जो सहाय बलबीर।
दस हजार गज बल घट्यौ, घट्यौ न दस गज चीर ॥१६०॥
जो गृह करै तो धर्म कर, नहीं तो कर बैराग।
बैरागी बंधन करै, ताको बड़ो अभाग ॥१६१॥
गो धन गज धन बाजि धन, और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूल समान ॥१६२॥
एक घड़ी आधी घड़ी, आधी ते पुनि आध।
भीखा संगति साधुकी, कटैं कोटि अपराध ॥१६३॥

करत करत अभ्यासके, जड़मति होत सुजान ।
रसरी आवत जात ते, शिल पर होत निशान ॥१६४॥
जननी जनै तो भक्तजन, कै दाता कै शूर ।
नाहीं तौ तू बाँझ रह, काहि गँवावै नूर ॥१६५॥
अजगर करैं न चाकरी, पंछी करैं न काम ।
दास मलूका यों कहैं, सभ के दाता राम ॥१६६॥
भोजन छादन की नहीं, सोच करैं हरिदास ।
विश्व भरण प्रभु करत हैं, ते क्यों रहैं निरास ॥१६७॥
पुनि श्रीमुख गीता विषै, भाष्यो अर्जुन पास ।
योग क्षेम सब हौं करों, जिनके मेरी आस ॥१६८॥
गिरह गाँठ नहिं बाँधते, जब देवै तब खाहिं ।
प्रभु तिनके पाछे फिरैं, मत भूखे रहि जाहिं ॥१६९॥
माया सगी न मन सगा, सगा न यह संसार ।
परशुराम या जीवको, सगा सो सिरजनहार ॥१७०॥
जब लग घटमें प्राण है, तब लग प्रभु न बिसार ।
नारायणको ध्यान धर, पल पल नाम चितार ॥१७१॥
जिन खोजा तिन पाइया, पारब्रह्म घट माहिं ।
यह जग बौरा हो रह्या, इत उत ढूँढ़न जाहिं ॥१७२॥
राम नाम अवलंब बिनु, परमारथ की आस ।
बरषत बारिद बूँद गहि, चाहत चढ़न अकास ॥१७३॥
तुलसी हठि हठि कहत नित, चित सुनि हित करि मानि ।
लाभ राम सुमिरन बड़ो, बड़ी बिसारें हानि ॥१७४॥

बिगरी जनम अनेक की, सुधरै अबहीं आजु ।
होहि रामकौ, नाम जपु, तुलसी तजि कुसमाजु ॥१७५॥
राम भरोसौ राम बल, राम नाम बिस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, माँगत तुलसीदास ॥१७६॥
राम नाम रति, राम गति, राम नाम बिस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, चहुँ दिसि तुलसीदास ॥१७७॥
रे मन सबसों निरस ह्वै, सरस राम सों होहि ।
भलो सिखावन देत है, निसि दिन तुलसी तोहि॥१७८॥
स्वारथ सीता राम सों, परमारथं सिय राम ।
तुलसी तेरौ दूसरे, द्वार कहा कहु काम ॥१७९॥
राम प्रेम बिनु दूबरौ, राम प्रेमहीं पीन ।
रघुवर कबहुँक करहुगे, तुलसिहि ज्यों जल मीन॥१८०॥
निगम अगम साहेब सुगम, राम साँचिली चाह।
अंबु असन अवलोकिअत, सुलभ सबै जग माँह ॥१८१॥
सब साधन को एक फल, जेहिं जान्यो सो जान ।
ज्यों त्यों मन मंदिर बसहिं, राम धरें धनु बान ॥१८२॥
तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार ।
राग न रोष न दोष दुख, दास भये भव पार ॥१८३॥
जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निष्फल सेव ।
कह कबीर वह क्यों मिलै, निःकामी निज देव ॥१८४॥
लागी लागी क्या करै, लागी बुरी बलाय ।
लागी सोई जानियै, जो वार पार ह्वै जाय ॥१८५॥

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥१८६॥
छिनहि चढ़ै, छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय ।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय ॥१८७॥
प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्है कोय ।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय ॥१८८॥
दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय ।
बिना जीव की स्वास से, लोह भस्म हो जाय ॥१८९॥
साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदे आप ॥१९०॥
निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय ।
बिना पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ॥१९१॥
लतन तरै ठाढ़ो कबहूँ, कबहूँ यमुना तीर ।
नारायण नैनन बसी, मूरति श्याम शरीर ॥१९२॥
जाके मन यह छवि बसी, सोवत हू बर रात ।
नारायण कुंडल निकट, अदभुत अकल सुहात ॥१९३॥
जो घायल हरि दृगन के, परे प्रेम के खेत ।
नारायण सुनि श्याम गुण, एक संग दो देत ॥१९४॥
नारायण जाको हियो, बिंध्यों श्याम दृग बान ।
जग के भावैं जीवतो, है वह मृतक समान ॥१९५॥
सुख संपति धन धाम की, ताहि न मनमें आस ।
नारायण जाके हिये, निशिदिन प्रेम प्रकाश ॥१९६॥

नारायण मनमें बसी, लोक लाज कुलकान।
आशिक होनौ श्यामको, हाँसी खेल न जान ॥१९७॥
सो क्यों सेवै बाग वन, गुल्म लता तरु मूल।
नारायण जाके हृदय, फूल रह्यो वह फूल ॥१९८॥
नारायण या डगरमें, कोउ चलत है बीर।
पग पगमें बरछी लगै, श्वास श्वासमें तीर ॥१९९॥
लगन लगी गोपालकी, भूली तनकी सार।
नारायण मछली भयौ, श्यामरूप जलधार ॥२००॥
नारायण या प्रेमको, नद उमड़त जा ठौर।
पलमें लाज म्रजादके, तट काटत है दौर ॥२०१॥
दुर्लभ मानुष जनम है, देह न बारंबार।
तरुवर ज्यों पत्ता झड़े, बहुरि न लागै डार ॥२०२॥
माँगत मरन समान है, मति कोइ माँगौ भीख।
माँगनसे मरना भला, यह सतगुरुकी सीख ॥२०३॥
लूटि सकै तो लूटि लै, राम-नामकी लूटि।
पाछे फिरि पछताहुगे, प्राण जाहिं जब छूटि ॥२०४॥
समदृष्टी तब जानिये, सीतल समता होय।
सब जीवनकी आतमा, लखै एकसी सोय ॥२०५॥
साधू भूखा भावका, धनका भूखा नाहिं।
धनका भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिं ॥२०६॥
कबिरा संगत साधकी, हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाधकी, आठों पहर उपाधि ॥२०७॥

कबिरा संगत साधुकी, जौंकी भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिलै, साकट संग न जाय ॥२०८॥
आछे दिन पाछे गये, हरिसे किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़िया चुग गई खेत ॥२०९॥
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पलमें परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब ॥२१०॥
पाव पलककी सुध नहीं, करै कालहका साज।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतरको बाज ॥२११॥
सुमिरन सों मन लाइये, जैसे नाद कुरंग।
कह कबीर बिसरै नहीं, प्राण तजै तेहि संग ॥२१२॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमें रही न हूँ।
वारी तेरे नामपर, जित देखूँ तित तूँ ॥२१३॥
साधू गाँठ न बाँधई, उदर समाना लेय।
आगे पीछे हरि खड़े, जब माँगै तब देय ॥२१४॥
गुण मंदिर सुंदर जुगल, मंगल मोद निधान।
नारायण निज चरन रति, यह दीजै वरदान ॥२१५॥
नारायण सुख-भोगमें, तू लंपट दिन रैन।
अंत-समय आयो निकट, देख खोलके नैन ॥२१६॥
नारायण जिनके हृदय, प्रीति लगी घनश्याम।
जाति पाँति कुल सों गये, रहे न काहू काम ॥२१७॥
पराभक्ति अरु ज्ञानमें, नेक नहीं कछु भेद।
नारायण सुख प्रेम है, कहैं संत अरु वेद ॥२१८॥

परामक्ति याको कहौं, जित तित श्याम दिखाव ।
नारायण सो ज्ञान है, पूरण ब्रह्म लखाव ॥२१९॥
कोऊ नहिं अपनो सगो, बिन राधागोपाल ।
नारायण तू वृथा मति, परै जगत्के जाल ॥२२०॥
नारायण निज हियेमें, अपने दोष विचार ।
ता पीछे तू औरके, औगुण भले निहार ॥२२१॥
नारायण मैं सत्य कहुँ, भुज उठाय कै आज ।
जो जिग बनै गरीब तू, मिलै गरीबनिवाज ॥२२२॥
भीतर सो मैलो हियो, बाहर रूप अनेक ।
नारायण तासों भलो, कौआ तन मन एक ॥२२३॥
छवि निहारि गोपालकी, जेहि न होय आनंद ।
नारायण तेहिं जानिये, यही चौथको चंद ॥२२४॥
रे मन क्यों भटकत फिरत, भज श्रीनंदकुमार ।
नारायण अबहूँ समझ, भयो न कछु बिगार ॥२२५॥
नारायण तू भजन कर, कहा करैंगे क्रूर ।
अस्तुति निंदा जगतकी, दोउनके सिर धूर ॥२२६॥
चार दिननकी चाँदनी, यह संपति संसार ।
नारायण हरि भजन कर, जासों होय उबार ॥२२७॥
उर भीतर अति चाहना, बाहर राखत त्याग ।
नारायण वा त्याग पै, परौ भारकी आग ॥२२८॥
मान बड़ाई ईरषा, मनमें भरी अनेक ।
नारायण साधू बने, देखौ अचरज एक ॥२२९॥

सुमरन सुरत लगाय कर, मुख ते कछू न बोल ।
बाहरके पट देय कर, अंतरके पट खोल ॥२३०॥
माला तो करमें फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं ।
मनुवा तो दह दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥२३१॥
कहता हूँ, कह जात हूँ, कहा बजाऊँ ढोल ।
श्वासा खाली जात है, तीन लोकका मोल ॥२३२॥
ऐसे महँगे मोलका, एक श्वास जो जाय ।
चौदह लोक पटतर नहीं, काहे धूरि मिलाय ॥२३३॥
नाम जपत कुष्टी भला, चुइ चुइ पड़ै जो चाम ।
कंचन देही काम किस, जो मुख नाहीं नाम ॥२३४॥
द्वार धनीके पड़ रहै, धका धनीका खाय ।
कबहुँक धनी निबाजई, जो दर छोड़ न जाय ॥२३५॥
मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर ॥२३६॥
जैसी लौ पहिले लगी, तैसी निबहै ओर ।
अपनी देहकी को गनै, तारै पुरुष करोर ॥२३७॥
सिंहोंके लहिड़े नहीं, हंसोंकी नहिं पात ।
लालोंकी नहिं बोरियाँ, साधु न चलै जमात ॥२३८॥
नारि पराई आपनी, भोगें नरकै जाय ।
आग आग सब एक सी, हाथ दियें जल जाय ॥२३९॥
नारि नसावै तीन गुण, जो नर पासे होय ।
भक्ति मुक्ति निज ध्यानमें, बैठ न सक्के कोय ॥२४०॥

नारी नदी अथाह जल, बूड़ मुआ संसार ।
ऐसा साधू कब मिलै, जा सँग उतरूँ पार ॥२४१॥
छोटी मोटी कामिनी, सबही विषकी वेल ।
बैरी मारे दाँवसे, यह मारै हँस खेल ॥२४२॥
सुखके माथे सिल पड़ै, जो नाम हृदयसे जाय ।
बलिहारी वा दुःखकी, जो पल पल नाम जपाय॥२४३॥
सुमिरनकी सुध यों करो, ज्यों सुरभी सुत माहिं ।
कहै कबीर चारो चरत, बिसरत कबहूँ नाहिं ॥२४४॥
सुमिरनकी सुध यों करो, जैसे दाम कँगाल ।
कह कबीर बिसरै नहीं, पल पल लेय सम्हाल॥२४५॥
सुमरन सों मन लाइये, जैसे कीड़ा भृंग ।
कबिर बिसारै आपको, होय जाय तिहिं रंग ॥२४६॥
(कबीर)लूटना है तो लूट ले, राम नामकी लूट ।
फिर पाछे पछतायगा, (जब) प्राण जायँगे छूट॥२४७॥
कबीर सो मुख धन्य है, जिहिं मुख निकसै राम ।
देही किसकी बापुरी, पवित्र होहै ग्राम ॥२४८॥
सपनेहूँ बर्रायके, जिहि मुख निकसत राम ।
ताके पगकी पगतरी, मेरे तनको चाम ॥२४९॥
निर्बल नहीं सताइये, जाकी मोटी हाय ।
मुई खालकी फूँकसे, सार भसम हो जाय ॥२५०॥
हरिजन तू हारा भला, जीतन दे संसार ।
हारा तू हरिसे मिलै, जीता यमके द्वार ॥२५१॥

मृग मीन भृंग पतंग कुंजर, एक दोष विनास ।
पाँच दोष असाध्य जामें, ताकि केतिक आस ॥२५२॥
सबही सुख वैरागमें, तेज तपस्या माहिं ।
भक्तीसे प्रभु होत वश, मुक्ति ज्ञान बिन नाहिं ॥२५३॥
दर दिवार दर्पण भये, जित देखूँ तित तोहि ।
कँकरी पथरी ठीकरी, भई आरसी मोहि ॥२५४॥
सुखको मूल विचार है, दुःख मूल अविचार ।
यह भाष्यो संक्षेपसे, चार वेदको सार ॥२५५॥
मरता मरता जग मुआ, मरहु न जान्या कोय ।
ऐसा मरना जो मरै, बहुरि न मरना होय ॥२५६॥
कबीर सूता क्या करहि, उठ किन जपहि मुरार ।
इक दिन सोवन होयगो, लंबे गोड़ पसार ॥२५७॥
कौड़ी कौड़ी जोड़के, जोड़े लाख करोड़ ।
चलती बेर न कछु मिल्या, लई लँगोटी तोड़ ॥२५८॥
रोड़ा हो रह बाटका, तज मनका अभिमान ।
ऐसा कोई दास हो, ताहि मिलैं भगवान ॥२५९॥
दुनियाँके धोके मुआ, चालत कुलकी कान ।
तब कुल किसका लाजसी, जब ले धरहिं मसान ॥२६०॥
टाले टोले दिन गयो, ब्याज बढंतो जाय ।
ना हरि भज्यौ न खत फट्यौ, काल पहूँच्यौ आय ॥२६१॥
कबिरा हमरा को नहीं, हम किसके हू नाहिं ।
जिन एह रचन रचाइया, तिस ही माँहि समाहिं ॥२६२॥

केशो केशो कूकिये, नहिं कूकिये असार ।
रात दिवसके कूकते, कबहुँ कि सुनै पुकार ॥२६३॥
श्वासो श्वास सम्हाल तो, इक दिन मिलिहैं आय ।
सुमरन रस्ता सहजका, सद्गुरु दिया बताय ॥२६४॥
खान पान सुख भोगमें, पशु भी परम सुजान ।
कहा अधिकता मनुजकी, जो न लखै भगवान ॥२६५॥
प्रीत रीत दुख मूल है, मैं कीनौ निरधार ।
प्रीत भली भगवानकी, जाते हो भव पार ॥२६६॥
प्रातहि उठिकै नित्य नित, करिये प्रभुको ध्यान ।
जाते जगमें होय सुख, अरु उपजै सतज्ञान ॥२६७॥
काहू ते कड़वो वचन, कहो न कबहूँ जान ।
तुरत मनुजके हृदयको, छेदत है जिमि वान ॥२६८॥
जानि सर्वगत ईश को, करो न कबहूँ पाप ।
सबहि चराचर जगत को, देखत है वह आप ॥२६९॥
सत्संगति निज कल्पतरु, सकल कामना देत ।
अमृतरूपी वचन कह, तिहूँ पाप हर लेत ॥२७०॥
सतसंगति सुख पलक जो, मुक्ति न तासु समान ।
ब्रह्मादिक इंद्रादि भू, निपट अल्प ये जान ॥२७१॥
जगत मोह पाशी अजर, कटै न आन उपाय ।
जो नित सतसंगत करत, सहज मुक्त हो जाय ॥२७२॥
कामधेनु अरु कल्पतरु, जो सेवत फल होय ।
सतसंगत छिन एकमें, प्राणी पावै सोय ॥२७३॥

सार एक हरि नाम है, जगत विषय विन सार।
जैसे मोती ओस कौ, मिटत न लागै बार ॥२७४॥
विघन विनाशन शुभकरन, हरन ताप त्रय शूल।
चरित ललित नँदलाल के, सकल सुखन के मूल ॥२७५॥
योगी पावै योग सों, ज्ञानी लहै विचार।
नानक पावै भक्ति सों, जाको प्रेम अधार ॥२७६॥
विरध भयो, सूझै नहीं, काल पहूँच्यौ आन।
कह नानक नर बावरे, क्यों न भजै भगवान ॥२७७॥
पतित उधारन भय हरन, हरि अनाथके नाथ।
कह नानक तिहिं जानिये, सदा बसत रघुनाथ ॥२७८॥
भय नासन दुर्मति हरन, कलि महिं हरि कौ नाम।
निशि दिन जो नानक भजै, सफल होहिं तिहि काम ॥२७९॥
जिह्वा गुण गोविंद भज, कर्ण सुनौ हरिनाम।
कह नानक सुन रे मना, परहि न यमके धाम ॥२८०॥
जो सुखको चाहै सदा, शरण रामकी लेह।
कह नानक सुन रे मना, दुर्लभ मानुप देह ॥२८१॥
मन मायामें फँसि रह्यौ, विसरयौ गोविंद नाम।
कह नानक हरिभक्ति विन, जीवन कौने काम ॥२८२॥
जन्म जन्म भरमत फिरयौ, मिट्यौ न यम कौ त्रास।
कह नानक हरि भज मना, निर्भय पावहि वास ॥२८३॥
संग सखा सब तज गये, कोउ न निबह्यौ साथ।
कह नानक यहि विपतिमें, एक टेक रघुनाथ ॥२८४॥

दीन दुखी असहायका, करौ सदा उपकार ।
जानौ वेद पुराणका, यही एक है सार ॥२८५॥
हे हरि हे जगदीश हे, नँदनंदन व्रजचंद ।
कोउ दिन तौ निज दरस दै, हरौ दीन दुख द्वंद ॥२८६॥
कोटि कोटि बीते जनम, तुम वियोग बिललात ।
अब तौ मुख दिखराय कै, हरौ पीर मम तात ॥२८७॥
वेगि दयानिधि दीनकी, सुनि कै कातर टेर ॥
धाय दरस प्रभु दीजियो, अब जनि करिये देर ॥२८८॥
धूमधाममें दिन गया, सोचत हो गइ साँझ ॥
एक घरी हरि ना भजा, जननी जन भइ बाँझ ॥२८९॥
राजा राना राव रँक, बड़ा जो सुमरै राम ॥
कह कबीर बंदा बड़ा, जो सुमरे निष्काम ॥२९०॥
चिंता तो हरिनामकी, और न चितवै दास ।
जो कछु चितवै नाम बिनु, सोइ कालकी फाँस ॥२९१॥
कबिरा हरिके नाममें, बात चलावै और ।
तिस अपराधी जीवको, तीन लोक नहिं ठौर ॥२९२॥
रग रग बोलै रामजी, रोम रोम रंकार ।
सहजे ही धुनि होत है, सो ही सुमरन सार ॥२९३॥
देह धरेका फल यही, भज मन कृष्ण मुरार ।
मनुज जनमकी मौज यह, मिलै न बारंबार ॥२९४॥
कृष्ण नाम गुन गुप्त धन, पावैं हरिजन संत ।
करै नहीं जो कामना, दिन दिन होय अनंत ॥२९५॥

सकल रैन सोवत गई, उग्या चहै अब भान ।
अब भी भज भगवानको, जो चाहै कल्यान ॥२९६॥
गिरा अरथ जल बीचि सम, कहिअत भिन्न न भिन्न ।
बंदउँ सीताराम पद, जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥२९७॥
बरषा रितु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास ।
रामनाम बर बरन जुग, सावन भादव मास ॥२९८॥
एकु छत्रु एकु मुकुटमनि, सब बरननि पर जोउ ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ ॥२९९॥
रामनाम मनिदीप धरु, जीह देहरीं द्वार ।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ, जौं चाहसि उजियार ॥३००॥
सकल कामना हीन जे, राम भगति रस लीन ।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद, तिन्हहुँ किए मन मीन ॥३०१॥
निरगुन तें एहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार ।
कहउँ नामु बड़ राम तें, निज बिचार अनुसार ॥३०२॥
सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल, बेद बिदित गुनगाथ ॥३०३॥
ब्रह्म राम तें नामु बड़, बरदायक बरदानि ।
रामचरित सत कोटि महँ, लिय महेस जियँ जानि ॥३०४॥
नामु राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवासु ।
जो सुमिरत भयो भाँग तें, तुलसी तुलसीदासु ॥३०५॥
रामनाम नरकेसरी, कनककसिपु कलिकाल ।
जापकजन प्रहलाद जिमि, पालिहिं दलि सुरसाल ॥३०६॥

सठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं राम कृपालु ।
उपल किए जल जान जेहिं, सचिव सुमति कपि भालु॥३०७॥
हौंहु कहावत सबु कहत, राम सहत उपहास ।
साहिब सीतानाथ सो, सेवक तुलसीदास ॥३०८॥
प्रभु तरु तर कपि डार पर, ते किए आपु समान ।
तुलसी कहूँ न राम से, साहिब सीलनिधान ॥३०९॥
राम निकाईं रावरी, है सब ही को नीक ।
जौं यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक ॥३१०॥
करम वचन मन छाड़ि छलु, जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं, किएँ कोटि उपचार ॥३११॥
जसु तुम्हार मानस विमल, हंसिनि जीहा जासु ।
मुकताहल गुन गन चुनइ, राम बसहु हियँ तासु ॥३१२॥
सबु करि मागहिं एक फलु, राम चरन रति होउ ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु, सिय रघुनंदन दोउ ॥३१३॥
स्वामि सखा पितु मातु गुर, जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥३१४॥
जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु ।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु ॥३१५॥
स्वपच सबर खस जमन जड़, पावँर कोल किरात ।
रामु कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ॥३१६॥
मातु मते महुँ मानि मोहि, जो कछु करहिं सो थोर ।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर ॥३१७॥

पेम अमिअ मंदरु बिरहु, भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपासिंधु रघुबीर ॥३१८॥
कलि मल समन दमन मन, राम सुजस सुख मूल।
सादर सुनहिं जे तिन्ह पर, राम रहहिं अनुकूल ॥३१९॥
निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥३२०॥
कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए, बारंबार बखानि ॥३२१॥
गुर पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान ॥३२२॥
जाति हीन अघ जन्म महि, मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामंद मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥३२३॥
पुरइनि सघन ओट जल, बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिऐ, जैसें निर्गुन ब्रह्म ॥३२४॥
सुखी मीन सब एकरस, अति अगाध जल माहिं।
जथा धर्मसीलन्ह के, दिन सुख संजुत जाहिं ॥३२५॥
काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद, मायारूपी नारि ॥३२६॥
गुनागार संसार दुख, रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय, तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥३२७॥
एकु मैं मंद मोह बस, कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीनबंधु भगवान ॥३२८॥

सो अनन्य जाकें असि, मति न टरइ हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत ॥३२९॥
कबहुँ प्रबल बह मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं ।
जिमि कपूत के उपजें, कुल सद्धर्म नसाहिं ॥३३०॥
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग ।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग ॥३३१॥
चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि ।
जिमि हरिभगति पाइ श्रम, तजहिं आश्रमी चारि ॥३३२॥
भूमि जीव संकुल रहे, गए सरद रितु पाइ ।
सदगुर मिलें जाहिं जिमि, संसय भ्रम समुदाइ ॥३३३॥
भव भेषज रघुनाथ जसु, सुनहिं जे नर अरु नारि ।
तिन्ह कर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिसिरारि ॥३३४॥
तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग ॥३३५॥
रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाइ ।
नव तुलसिका बृंद तहँ, देखि हरष कपिराइ ॥३३६॥
नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित, जाहिं प्रान केहिं बाट ॥३३७॥
सचिव बैद गुर तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगिहीं नास ॥३३८॥
काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ ।
सब परिहरि रघुबीरहि, भजहु भजहिं जेहि संत ॥३३९॥

बार बार पद लागउँ, बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोसलाधीस ॥३४०॥
रामु सत्यसंकल्प प्रभु, सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि ॥३४१॥
जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि, भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ, इन्ह नयनन्हि अब जाइ ॥३४२॥
सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि ॥३४३॥
उभय भाँति तेहि आनहु, हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले, अंगद हनू समेत ॥३४४॥
श्रवन सुजस सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुबीर ॥३४५॥
तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ, सोक धाम तजि काम ॥३४६॥
अहोभाग्य मम अमित अति, राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव, सेब्य जुगल पद कंज ॥३४७॥
सगुन उपासक परहित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम, जिन्ह कें द्विज पद प्रेम ॥३४८॥
रावन क्रोध अनल निज, स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ, दीन्हेउ राजु अखंड ॥३४९॥
जो संपति सिव रावनहि, दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि, सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥३५०॥

श्रीरघुबीर प्रताप ते, सिंधु तरे पाषान ।
ते मतिमंद जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन ॥३५१॥
तापस बेष गात कृस, जपत निरंतर मोहि ।
देखौं बेगि सो जतनु करु, सखा निहोरउँ तोहि ॥३५२॥
बीतें अवधि जाउँ जौं, जिअत न पावउँ बीर ।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु, पुनि पुनि पुलक सरीर ॥३५३॥
करेहु कल्प भरि राजु तुम्ह, मोहि सुमरेहु मन माहिं ।
पुनि मम धाम पाइहहु, जहाँ संत सब जाहिं ॥३५४॥
उमा जोग जप दान तप, नाना मख ब्रत नेम ।
राम कृपा नहिं करहिं तसि, जसि निष्केवल प्रेम ॥३५५॥
यह कलिकाल मलायतन, मन करि देखु बिचार ।
श्रीरघुनाथ नाम तजि, नाहिन आन अधार ॥३५६॥
बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि, नहिं भय सोक न रोग ॥३५७॥
दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्यसमाज ।
जीतहु मनहि सुनिअ अस, रामचंद्र कें राज ॥३५८॥
बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनेहि काज ।
मागें बारिद देहिं जल, रामचंद्र कें राज ॥३५९॥
जासु कृपा कटाच्छ सुर, चाहत चितव न सोइ ।
राम पदारबिंद रति, करति सुभावहि खोइ ॥३६०॥
ग्यान गिरा गोतीत अज, माया मन गुन पार ।
सोइ सच्चिदानंदघन, कर नर चरित उदार ॥३६१॥

संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ ।
कहहिं संत कवि कोविद, श्रुति पुरान सदग्रंथ ॥३६२॥
ताते सुर सीसन्ह चढ़त, जग वल्लभ श्रीखंड ।
अनल दाहि पीटत घनहि, परसु वदन यह दंड ॥३६३॥
निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय, गुन मंदिर सुख पुंज ॥३६४॥
परद्रोही परदार रत, परधन पर अपवाद ।
ते नर पावँर पापमय, देह धरें मनुजाद ॥३६५॥
ऐसे अधम मनुज खल, कृतजुग त्रेता नाहिं ।
द्वापर कछुक बृंद बहु, होइहहिं कलिजुग माहिं ॥३६६॥
सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताइ ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ ॥३६७॥
जो न तरै भवसागर, नरसमाज अस पाइ ।
सो कृतनिंदक मंदमति, आत्माहन गति जाइ ॥३६८॥
मम गुन ग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह ।
ताकर सुख सोइ जानइ, परानंद संदोह ॥३६९॥
उमा अवधवासी नर, नारि कृतारथ रूप ।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन, रघुनायक जहँ भूप ॥३७०॥
दयाकुँवर या जगतमें, नहीं रह्यो थिर कोय ।
जैसौ वास सराय कौ, तैसौ यह जग होय ३७१॥
जैसौ मोती ओसको, तैसौ यह संसार ।
विनस जाय छिन एक मैं, दया प्रभू उर धार ॥३७२॥

भाई बंधु कुटुंब सब, भए इकट्ठे आय।
दिना पाँचको खेल है, दया काल ग्रसि जाय ॥३७३॥
बहे जात हैं जीव सब, काल नदीके माहिं।
दया भजन-नौका बिना, उपजि उपजि मरि जाहिं ॥३७४॥
जनम जनमके बीछुरे, हरि अब रह्यो न जाय।
क्यों मन कूँ दुख देत हौ, विरह तपाय तपाय ॥३७५॥
बौरी ह्वै चितवत फिरूँ, हरि आवैं केहिं ओर।
छिन ऊठूँ छिन गिर परूँ, राम दुखी मन मोर ॥३७६॥
सोवत जागत एक पल, नाहिं मैं बिसरूँ तोहि।
करुना सागर दयानिधि, हरि लीजै सुधि मोहि ॥३७७॥
दया प्रेम प्रगट्यो तिन्हैं, तनकी तजि न सँभार।
हरि रसमें माते फिरैं, गृह बन कौन विचार ॥३७८॥
प्रेम मगन जे साध जन, तिन गति कही न जात।
रोय-रोय गावत हँसत, दया अटपटी बात ॥३७९॥
हरिरस माते जे रहैं, तिनको मतौ अगाध।
त्रिभुवनकी संपति दया, तृन सम जानत साध ॥३८०॥
प्रेम मगन गदगद बचन, पुलकि रोम सब अंग।
पुलकि रह्यौ मन कूपमें, दया न ह्वै चित भंग ॥३८१॥
कहूँ धरत पग परत कहुँ, डगमगात सब देह।
दया मगन हरि रूपमें, दिन दिन अधिक सनेह ॥३८२॥
चित चिंता हरि रूप बिन, मो मन कछु न सुहाय।
हरि हरषित हमकूँ दया, कब रे मिलैंगे आय ॥३८३॥

अब जल नदी भयावनी, किस विधि उतरूँ पार।
साहिब मेरी अरज है, सुनिये वारंवार॥३८४॥
निरपच्छीके पच्छ तुम, निराधारके धार।
मेरे तुमहीं नाथ इक, जीवन प्रान अधार॥३८५॥
हौं पामर, तुम हौ प्रभु, अधम उधारन ईस।
दयादास पर दया करौ, दयासिंधु जगदीस॥३८६॥
असंख जीव तरि तरि गए, ले ले तुम्हरौ नाम।
अबकी बेरी बापजी, परयौ मुगधसे काम॥३८७॥
जो जाकी ताकै सरन, ताको ताहि सम्हार।
तुम सब जानत नाथ जू, कहा कहौं विस्तार॥३८८॥
पूजा अरचन बंदगी, नहिं सुमिरन, नहिं ध्यान।
प्रभुजी अब राखे बनै, बृदबानेकी कान॥३८९॥
दुख तजि सुखकी चाह नहिं, नहिं बैकुंठ बिवान।
चरन कमल चित चहत हौं, मोहि तुम्हारी आन॥३९०॥
तनमद धनमद राजमद, अंतकाल मिटि जाय।
जिनके मद तेरो प्रभु, तेहि जम काल डेराय॥३९१॥
जो मेरे करमन लखौ, तौ नहिं होत उबार।
दयादास पर दया करि, दीजै चूक बिसार॥३९२॥
हौं अनाथ तोहि विनय करि, भय सों करूँ पुकार।
दयादास तन हेर प्रभु, अबके पार उतार॥३९३॥
जैसे सूरजके उदय, सकल तिमिर नसि जाय।
मिहर तुम्हारी हे प्रभु, क्यों अज्ञान रहाय॥३९४॥

सीस नवै तौ तुमहिं कूँ, तुमहिं सुँ भाखूँ दीन ।
जो झगरूँ तौ तुमहिं सूँ, तुम चरनन आधीन ॥३९५॥
चित चातक रटना लगी, स्वाति बूँदकी आस ।
दया-सिंधु भगवानजू, पुजवौ अबकी आस ॥३९६॥
कब कौ टेरत दीन भौ, सुनौ न नाथ पुकार ।
की स्रवन ऊँचौ सुनौ, की बृद दियौ बिसार ॥३९७॥
जगत सनेही जीव है, रामसनेही साध ।
तन मन धन तजि हरि भजै, जिनका मता अगाध । ३९८॥
साध संग संसारमें, दुर्लभ मनुष सरीर ।
सतसंगति सूँ मिटत है, त्रिविध तापकी पीर ॥३९९॥
साध रूप हरि आप हैं, पावन परम पुरान ।
मेटैं दुबिधा जीवकी, सबका करैं कल्यान ॥४००॥
साधुसंग छिन एक कौ, पुन्न न बरन्यौं जाय ।
रति उपजै हरिनाम सूँ, सबही पाप बिलाय ॥४०१॥
कोटि जग्य ब्रत नेम तृथ, साध संगमें होय ।
विषय व्याधि सब मिटत हैं, सांतिरूप सुख जोय ॥४०२॥
कलि केवल संसारमें, और न कोउ उपाय ।
साध संग हरिनाम बिन, मनकी तपन न जाय ।।४०३॥
साध संग जगमें बड़ो, जो करि जानै कोय ।
आधौ छिन सतसंगकौ, कलमख डारै खोय ॥४०४॥
पियकौ रूप अनूप लखि, कोटि भान उँजियार ।
दया सकल दुख मिटि गयौ, प्रगट भयौ सुख सार॥४०५॥

वही एक व्यापक सकल, ज्यों मनिका मैं डोर ।
थिर चर कीट पतंग मैं, दया न दूजो और ॥४०६॥
अजर अमर अविगत अमित, अनुभव अलख अभेव।
अविनासी आनंदमय, अभय सो आनँद देव ॥४०७॥

घाटपर श्रीगङ्गाजीकी महिमाके श्लोक

गङ्गेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम् ।
कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद्गुरुकल्मषम् ॥
(पद्म० सृष्टि० ६० । ५)

गङ्गाजीके नामके स्मरणमात्रसे पातक, कीर्तनसे अतिपातक और दर्शनसे भारी-भारी पाप (महापातक) भी नष्ट हो जाते हैं ।

स्नानात्पानाच्च जाह्नव्यां पितॄणां तर्पणात्तथा ।
महापातकवृन्दानि क्षयं यान्ति दिने दिने ॥
(६० । ६)

गङ्गाजीमें स्नान, जलपान और पितरोंका तर्पण करनेसे महापातकोंकी राशिका प्रतिदिन क्षय होता रहता है ।

अग्निना दह्यते तूलं तृणं शुष्कं क्षणाद् यथा ।
तथा गङ्गाजलस्पर्शात्पुंसां पापं दहेत् क्षणात् ॥
(६० । ७)

जैसे अग्निका संसर्ग होनेसे रूई और सूखे तिनके क्षणभरमें भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार गङ्गाजी अपने जलका स्पर्श होनेपर मनुष्योंके सारे पाप एक ही क्षणमें दग्ध कर देती हैं ।

तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैर्व्रतैर्नानाविधैस्तथा ।
पुरुदानैर्गतिर्या च गङ्गां संसेव्य तां लभेत् ॥
(६० । २४)

तपस्या, बहुत-से यज्ञ, नाना प्रकारके व्रत तथा पुष्कल दान करनेसे जो गति प्राप्त होती है, गङ्गाजीका सेवन करनेसे मनुष्य उसी गतिको पा लेता है ।

त्यजन्ति पितरं पुत्राः प्रियं पत्न्यः सुहृद्गणाः ।
अन्ये च बान्धवाः सर्वे गङ्गा तान्न परित्यजेत् ॥
(६० । २६)

पुत्र पिताको, पत्नी प्रियतमको, सम्बन्धी अपने सम्बन्धीको तथा अन्य सब भाई-बन्धु भी प्रिय बन्धुको छोड़ देते हैं; किंतु गङ्गाजी अपने जनोंका परित्याग नहीं करतीं ।

विष्णुपादार्घसम्पूते गङ्गे त्रिपथगामिनि ।
धर्मद्रवीति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि ॥

गङ्गे ! तुम श्रीविष्णुका चरणोदक होनेके कारण परम पवित्र हो तथा तीनों लोकोंमें गमन करनेसे त्रिपथगामिनी कहलाती हो । तुम्हारा जल धर्ममय है, इसलिये तुम धर्मद्रवीके नामसे विख्यात हो । जाह्नवी ! मेरे पाप हर लो ।

विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता ।
त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात् ॥
(६० । ६१)

भगवान् विष्णुके चरणोंसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है ।

तुम श्रीविष्णुद्वारा सम्मानित वैष्णवी हो । मुझे जन्मसे लेकर मृत्युतकके पापोंसे बचाओ ।

श्रद्धया धर्मसम्पूर्णे श्रीमता रजसा च ते ।
अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनीहि माम् ॥
(६० । ६२)

धर्मसे परिपूर्ण महादेवी भागीरथी ! तुम अपने शोभायमान रजःकणोंसे और अमृतमय जलसे मुझे श्रद्धासम्पन्न बनाती हुई पवित्र करो ।

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥
(६० । ७८)

जो सैकड़ों योजन दूरसे भी 'गङ्गा, गङ्गा' ऐसे कहता है वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकको प्राप्त होता है ।

पाठयज्ञपरैः सर्वैर्मन्त्रहोमसुरार्चनैः ।
सा गतिर्न भवेज्जन्तोर्गङ्गासंसेवया च या ॥
(६० । ११६)

पाठ, यज्ञ, मन्त्र, होम और देवार्चन आदि समस्त शुभ कर्मोंसे भी जीवको वह गति नहीं मिलती, जो श्रीगङ्गाजीके सेवनसे प्राप्त होती है ।

विशेषात्कलिकाले च गङ्गा मोक्षप्रदा नृणाम् ।
कृच्छ्राच्च क्षीणसत्त्वानामनन्तः पुण्यसम्भवः ॥
(६० । १२३)

विशेषतः इस कलिकालमें सत्त्वगुणसे रहित मनुष्योंको कष्टसे छुड़ाने—मोक्ष प्रदान करनेवाली गङ्गाजी ही हैं। गङ्गाजीके सेवनसे अनन्त पुण्यका उदय होता है।

पुनाति कीर्तिता पापं दृष्टा भद्रं प्रयच्छति।
अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम्॥

(पद्म० स्व० ३९।८६)

गङ्गाजी नाम लेनेमात्रसे पापोंको धो देती हैं, दर्शन करनेपर कल्याण प्रदान करती हैं तथा स्नान करने और जल पीनेपर सप्त पीढ़ियोंतकको पवित्र कर देती हैं।

न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवः केशवात्परः।
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः॥

(३९।८९)

ब्रह्माजीका कथन है कि गङ्गाके समान तीर्थ, श्रीविष्णुसे बढ़कर देवता तथा ब्राह्मणोंसे बढ़कर पूज्य कोई नहीं है।

यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति तस्य देहिनः।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥

(४३।५२)

किसी भी जीवकी हड्डियाँ जितने वर्षोंतक गङ्गामें रहती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है।

तीर्थानां तु परं तीर्थं नदीनामुत्तमा नदी।
मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि॥

(४३।५३)

गङ्गा तीर्थोंमें श्रेष्ठ तीर्थ, नदियोंमें उत्तम नदी तथा सम्पूर्ण महापातकियोंको भी मोक्ष देनेवाली है ।

सर्वेषां चैव भूतानां पापोपहतचेतसाम् ।
गतिरन्यत्र मर्त्यानां नास्ति गङ्गासमा गतिः ॥

(४३ । ५५)

जिनका चित्त पापसे दूषित है, ऐसे समस्त प्राणियों और मनुष्योंकी गङ्गाके सिवा अन्यत्र गति नहीं है ।

पवित्राणां पवित्रं या मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा ॥

(४३ । ५६)

भगवान् शङ्करके मस्तकसे होकर निकली हुई गङ्गा सब पापोंको हरनेवाली और शुभकारिणी हैं । वे पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाली और मङ्गलमय पदार्थोंके लिये भी मङ्गलकारिणी हैं ।

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी कुछ पुस्तकें—

१	श्रीमद्भगवद्गीता—तत्त्वविवेचनी नामक हिंदी-टीका, पृष्ठ ६८४, मू०	४.००
२	महत्त्वपूर्ण शिक्षा—पृष्ठ ४७६, चित्र ४, मूल्य ...	१.००
३	परम साधन—पृष्ठ ३७२, चित्र ५, मूल्य	१.००
४	मनुष्य-जीवनकी सफलता—पृष्ठ ३५२, चित्र ५, मूल्य ...	१.००
५	परम शान्तिका मार्ग—पृष्ठ ४१६, चित्र ६, मूल्य ...	१.००
६	ज्ञानयोगका तत्त्व—पृष्ठ ३८४, चित्र ३, मूल्य ...	१.००
७	प्रेमयोगका तत्त्व—पृष्ठ ३८०, चित्र ६, मूल्य ...	१.००
८	तत्त्व-चिन्तामणि—(भाग १) पृष्ठ ३५२, मूल्य ...	.६२
९	,, ,, (भाग २) पृष्ठ ५९२, मूल्य ...	.८७
१०	,, ,, (भाग ३) पृष्ठ ४२४, मूल्य ...	.७०
११	,, ,, (भाग ४) पृष्ठ ५२८, मूल्य ...	.८१
१२	,, ,, (भाग ५) पृष्ठ ४९६, मूल्य ...	.८१
१३	,, ,, (भाग ६) पृष्ठ ४५६, मूल्य ...	१.००
१४	,, ,, (भाग ७) पृष्ठ ५२०, मूल्य ...	१.१२
१५	,, ,, (भाग १)—(गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ४४८, मूल्य ...	.३१
१६	,, ,, (भाग २)—सचित्र, पृष्ठ ७५२, मूल्य ...	.३७
१७	,, ,, (भाग ३)—सचित्र, पृष्ठ ५६०, मूल्य ...	.३१
१८	,, ,, (भाग ४)—सचित्र, पृष्ठ ६८४, मूल्य ...	.३७
१९	,, ,, (भाग ५)—सचित्र, पृष्ठ ६२१, मूल्य ...	.३७
२०	रामायणके कुछ आदर्श पात्र—पृष्ठ १६८, मूल्य ...	.३७
२१	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा—पृष्ठ १७६, मूल्य ...	.३७
२२	परमार्थ-पत्रावली—(भाग १) ५१ पत्रोंका संग्रह, पृष्ठ ११२, मूल्य	.२५
२३	,, (भाग २) ८० ,, पृष्ठ १७२, मूल्य	.२५
२४	,, (भाग ३) ७२ ,, पृष्ठ २००, मूल्य	.५०
२५	,, (भाग ४) ९१ ,, पृष्ठ २१४, मूल्य	.५०
२६	अध्यात्मविषयक पत्र—सचित्र, पृष्ठ १६४, मूल्य ...	.५०
२७	शिक्षाप्रद पत्र—सचित्र, पृष्ठ २४२, मूल्य ...	.५०

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

गङ्गा-प्रार्थना

भगवति तव तीरे नीरमात्राशनोऽहं
विगतविषयतृष्णः कृष्णमाराधयामि ।
सकलकलुषभङ्गे स्वर्गसोपानसङ्गे
तरलतरतरङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद ॥

'हे देवि ! तुम्हारे तीरपर केवल तुम्हारा जल पान करता हुआ, विषयतृष्णासे रहित हो, मैं श्रीकृष्णचन्द्रकी आराधना करूँ ! हे सकलपापविनाशिनि ! स्वर्गसोपान-रूपिणि ! तरलतरङ्गिणि देवि गङ्गे ! मुझपर प्रसन्न हो !'